International Journal of Scientific Research in Science and Technology
Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X (www.ijsrst.com)
doi : https://doi.org/10.32628/IJSRST

शिक्षा के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचार

शोधार्थी – **प्रतीक त्रिपाठी**, कलिंगा विश्वविद्यालय, नया रायपुर, छत्तीसगढ़
निर्देशिका – **डॉ0 बीनू शुक्ला**, प्रवक्ता शिक्षाशास्त्र विभाग, कलिंगा विश्वविद्यालय, नया रायपुर, छत्तीसगढ़

Article Info
Volume 8, Issue 4
Page Number : 155-158

Publication Issue
July-August-2021

Article History
Accepted : 02 July 2021
Published : 07 July 2021

जब हम बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के इतिहास की ओर नजर डालते हैं तो हमें एक आश्चर्यजनक तथ्य की प्रतीति होती है। यह भारत के इतिहास का एक संक्रान्ति काल था और जितने भी महान व्यक्ति इस काल में अवतरित हुए प्रायः सभी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। गाँधी, नेहरू, अरविन्द घोष, विनोवा भावे, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि सभी मनीषियों पर यह बात लागू होती है। ये व्यक्ति न केवल राजनीतिज्ञ, समाज–सुधारक या अर्थशास्त्री ही थे, बल्कि सन्तों की उस परम्परा से सम्बन्ध रखते थे, जिसके शुरूआत शंकर से मानी जा सकती है। अगर भारतीय संस्कृति के ये अग्रदूत अपनी भूमिका का निर्वाह न कर पाते तो हम आज के भारतीय मानस की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। यह सच है कि हमारा वर्तमान हमारी आशाओं के अनुरूप नहीं, जिन कुत्सित वृत्तियों का प्रचार–प्रसार आज देखने को मिल रहा है, वह इन मनीषियों की भावधारा के सर्वथा प्रतिकूल है।

आदर के साथ उन्हें गुरूदेव के नाम से पुकारा जाता है। वे जन्मना और कर्मणा महान् विभूति थे। स्वस्थ निर्मलकाया, उच्च ललाट, ऋषियों की भांति अविरल और सुदीर्घ दाढ़ियां, उनके व्यक्तित्व में निखार लाती थी। वे आध्यात्मिक अनुभव के गहरे ज्ञान से मण्डित थे और उनके व्यक्तित्व निर्माण पर वंशानुगत एवं तत्कालीन दशाओं के प्रभाव पड़े थे। रवीन्द्रनाथ मूलतः कवि थे, किन्तु जब 'कवि' शब्द का प्रयोग उनके सन्दर्भ में किया जाय, तो कुछ बातों को ध्यान में रखना होगा, वे क्षणिक भावावेश में अपनी भावनाओं को व्यक्त कर देने मात्र के अर्थ में कवि नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक, संवेदनशील की अभिव्यक्ति करने वाले कवि थे, उनकी कविता का विषय साधारण वस्तुबोध तक सीमित नहीं हैं, वे भारत की उस सांस्कृतिक विरासत के प्रतिनिधि कवि हैं, जो मानव–मन के शाश्वत मूल्यों की अभिव्यक्ति करते हैं।

गुरूदेव की कविता क्षणभर मन बहलाने की वस्तु नहीं है, वे मानव–हृदय की उन गहराइयों को छू सकते हैं, जिनकी अवधारणा से याप्त की विशिष्ट अस्मिता की पहचान होती है, हम इसी अर्थ में भारतीय

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

इतिहास से जुड़ते हैं, उनकी वैचारिकता के कई पहलू हो सकते हैं, उनकी व्याख्या भी हम विभिन्न सन्दर्भों में कर सकते हैं, किन्तु क्षण भर के लिए यह भी नहीं भूल सकते कि समस्त आयाम वहीं से उद्भूत नहीं हुए है।

टैगोर मूलतः साहित्यकार थे किन्तु साहित्य उनके लिए विधा–मात्र नहीं थ, उनके साहित्य को हम केवल रसास्वादन का एक साधन नहीं समझ सकते, उन्होंने कविता की रचना इसलिए नहीं कि कि, वे सिर्फ अपने व्यक्तिगत भावनाओं की रसात्मक अभिव्यक्ति कर सके, एक बात अवश्य सच है कि टैगोर जैसे व्यक्ति का साहित्य उनके दर्शन की अवधारणाओं से मुक्त करके नहीं देखा जा सकता, उनके दर्शन के बिना उनके साहित्य की कल्पना करना व्यर्थ होगा। टैगोर को समझने के लिए उनके साहित्य को सझना होगा।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर विश्वकवि थे। उनका मानवतावाद व्यापक था। जगन्नाथ मिश्र के अनुसार, ''हमारे जीवन के संकीर्ण प्रवाह को उन्होंने विश्व मानस–रूपी महासमुद्र के साथ संयुक्त कर दिया। उन्होंने हमारी दृष्टि को व्यापक, हृदय को उदार और अनुभूति को गंभीर बना दिया।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर वास्तव में सच्चे मानवतावादी थे। अपनी कृतियों में पीड़ित मानवता के प्रति उन्होंने संवेदना व्यक्त की है। उन्होंने संकीर्णता का विरोध किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर मनुष्य को परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति मानते थे। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय में एक व्याख्यान–माला के अन्तर्गत कहा था, ''मनुष्य का दायित्व महामानव का दायित्व है, जिसकी कहीं सीमा नहीं है। जन्तुओं का वास भूमण्डल पर है, मनुष्य का वास वहां है, जिसे वह देश कहता है और यह देश केवल भौमिक नहीं है, अपितु मानसिक है। मनुष्य–मनुष्य के मिलने से यह देश बनता है, यह मिलन ज्ञान एवं कर्म है।'' टैगोर मानव सम्मान और मानव अन्तःकरण की पवित्रता की उपेक्षा नहीं देख सकते थे। उनका कहना था कि, ''जो व्यक्ति समाज के प्रति अपने कर्तव्य तथा दायित्व अवहेलना करके शुद्ध जीवन का पूर्णत्व प्राप्त करना चाहता है, वह सामाजिक साहचर्य व एकता के आदर्शों के साथ विश्वासघात करता है।'' उनकी महान आत्मा पड़ोसियों के कष्टों से कराह उठती थी।

उन्हें इस बात का बहुत दुःख था कि मनुष्य अपने स्वार्स्थ के लिए औरों का शोषण करता है। मनुष्य के जीवन में ही मनुष्य और ब्रह्म का मिलन होना चाहिए, यहीं पर असीम और ससीम का मूल होना चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब मनुष्य अपने में अनन्त होने की भावना जागृत करे। रंगभेद, देशकाल की सीमाओं को तोड़कर प्रेम की प्रेरणा से सबसे बन्धुत्व का व्यवहार करे। साथ ही विश्व एक ही ब्रह्म की लीला है, उसमें पराया कौन हो सकता? सबमें एक ही प्राण और एक ही हृदय व्याप्त है। एक ही अनेकता के माध्यम से अपने को व्यक्त कर रहा है, तभी तो सृष्टि है। ऐसी दशा में विश्व बन्धुत्व ही जीवन को लक्ष्य होना चाहिए। इसी से सब कामों की प्रेरणा मिलनी चाहिए।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का मत है कि यहां के मनीषियों का ध्यान वाह्य जीवन के गठन की अपेक्षा आन्तरिक जीवन के गठन के प्रति था और भौतिक ऐश्वर्य के बजाय आध्यात्मिक ऐश्वर्य को यहां वरीयता दी गयी। भारत ने कभी भी किसी देश पर आक्रमण नहीं किया और भारत की दिग्विजय सांस्कृतिक रही। उन्होंने ने भारतीय संस्कृति और उसके आध्यात्मिक मूल्यों की ऐतिहासिक पद्धति से व्याख्या किया है। भारत ने इसे किसी पर वलात् थोपने का प्रयत्न नहीं किया। यहां भी सभ्यता समन्वयात्मक पद्धति का अनुसरण करती है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर वास्तव में सच्चे मानवतावादी थे। अपनी कृतियों में पीड़ित मानवता के प्रति उन्होंने संवेदना व्यक्त की है। उन्होंने संकीर्णता का विरोध किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर, मनुष्य को परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति मानते थे।

गुरुदेव ने अपने समय की अंग्रेजी माध्यम से चलने वाली शिक्षा को अव्यावहारिक बताया और मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने पर बल दिया। इन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि शिक्षा और जनसाधारण की भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए।

1–शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास कर उसके व्यक्तित्व का चतुर्मुखी विकास तथा सर्वांगीण विकास करना होना चाहिए।

2–शिक्षा का कार्य बालकों को अच्छा क्लर्क, निपुण किसान, शिल्पी या वैज्ञानिक बना देना नहीं है बल्कि उन्हें अनुभव की पूर्णता द्वारा पूर्ण मनुष्य के रूप में विकसित करना भी है।

3–बालकों को प्रकृति के घनिष्ठ संपर्क में रखकर शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि उन्हें प्रकृति के साथ घनिष्ठ संपर्क स्थापित करने में आनंद का अनुभव होता है।

4–विद्यार्थियों को नगरों की अनैतिकता, भीड़ और गंदगी से दूर प्रकृति के शांत तथा सायेदर और एकांत में रहना चाहिए।

5–भारतीय शिक्षा एवं भारतीय विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भारतीय दर्शन के प्रमुख विचारों को स्थान दिया जाना चाहिए।

6–शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिए एवं उसे भारत के भूत एवं भविष्य का ध्यान रखना चाहिए।

7–सभी विद्यार्थियों को भारतीय विचारधारा एवं भारतीय समाज की पृष्ठभूमि का स्पष्ट रूप से ज्ञान कराया जाना चाहिए।

8–प्रत्येक बालक एवं बालिका में संगीत, चित्रकला एवं अभिनय की योग्यताओं का विधि पूर्वक विकास करना चाहिए।

9–मातृभाषा शिक्षा का माध्यम होनी चाहिए क्योंकि इसके द्वारा ही संपूर्ण राष्ट्र को अच्छी प्रकार से शिक्षित किया जा सकता है।

10–अनंत मूल्यों की प्राप्ति विदेशी भाषा में संभव नहीं है, अतः इसीलिए मातृभाषा का प्रयोग करना चाहिए।

11–सच्ची शिक्षा बालकों को स्वतंत्र प्रयासों द्वारा ही प्राप्त करनी चाहिए।

12–विद्यार्थियों को पुस्तकों की बजाय प्रत्यक्ष स्रोतों से ज्ञान प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए।

13–शिक्षण पद्धति का आधार जीवन की वास्तविक बातें तथा प्रकृति होनी चाहिए।

14–बालकों को उत्तम मानसिक भोजन प्रदान करना चाहिए जिससे उनके मस्तिष्क का विकास विचारों के वायुमंडल में हो।

15–बालक का जन्म प्रकृति एवं मनुष्य दोनों के संचार में होता है। अतः दोनों संसार के लिए उनका आकर्षण बनाए रखना चाहिए।

16–विद्यार्थियों के सामाजिक आदर्शों, परंपराओं, प्रथाओं और रीति–रिवाजों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए।

17–बालकों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाए जो उन्हें अध्यात्मवाद की ओर अग्रसर होने का अवसर प्रदान करें।

18–शिक्षा द्वारा बालको में उच्च कोटि की धार्मिक भावना जागृत की जानी चाहिए जिससे उनमें मानवता का कल्याण करने की क्षमता का विकास हो।

19–शिक्षा ऐसी हो जो बालकों में दुख कातरता, परोपकार, सहिष्णुता इत्यादि गुणों का विकास करें।

20–शिक्षा द्वारा बालकों को सत्यम, शिवम, सुंदरम, ऐसे मूल्यों पर साक्षात्कार करना चाहिए।

21–विभिन्न विज्ञानों का अध्ययन देश में अपनी नींव तभी जमा सकता है जबकि ज्ञान साधारण को उनका ज्ञान हो जाए। किंतु यह तभी संभव है जब उसकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाए।

22–भारत में जनसाधारण को तभी शिक्षित किया जा सकता है जबकि प्रारंभिक स्कूलों को पुनः जीवित किया जाए।

23–शिक्षा को गतिशील एवं सजीव तभी बनाया जा सकता है जबकि उसका आधार व्यापक हो और समुदाय के जीवन में उसका घनिष्ट संबंध हो।

24–भारत में शिक्षा की कोई भी सच्ची तथा लाभप्रद राष्ट्रीय प्रणाली विदेशी नमूने की नकल पर आधारित नहीं की जा सकती।

25–राष्ट्रीय शिक्षा का तात्पर्य उच्च शिक्षा से है जिसका राष्ट्र के जीवन में घनिष्ठ संबंध हो और जो देशवासियों के संचित मूल्यों, परंपराओं, प्रथाओ, प्रिय आदर्शों से स्वाभाविक रूप से विकसित हो।

सन्दर्भ सूची :

1. गुप्ता, एस0पी0 (1999) : भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएं, शाखा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
2. कपित, एच.के. (1988) : अनुसंधान विधियाँ, एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
3. लाल, रमन बिहारी (2007) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, मेरठ।
4. पाण्डेय, राम शकल (2008) : उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा–2
5. प्रकाश, सूरज (1999) : दिवास्वप्न – शिक्षा सम्बन्धी प्रयोग की कहानी, नई दिल्ली, प्रकाश संस्थान, नई दिल्ली।
6. राय, पारसनाथ (2005) : अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।